P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-11* July- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

'धम्मपद' पालि साहित्य की अमूल्य निधि : वर्तमान परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन

सियाराम मीणा
एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
बूंदी

सारांश

'बोद्ध साहित्य भारतीय वाङमय की अमूल्य थाति है। बौद्ध–दर्शन व बौद्ध धर्म के प्रसार के कारण ही भारतीय संस्कृति व भारतीय धर्म को विश्व में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। बौद्ध दर्शन में उच्चता के दर्शन होते हैं। पं.राहुल संकृत्यायन ने लिखा है कि भारतीय वाङमय में बोद्ध–साहित्य और उसमें भी पालि साहित्य का बहुत महत्व है। वस्तुतः ईसवीं सन् के पहले और पीछे की पाँच शताब्दियों के भारत के विचार, साहित्य, समाज सभी क्षेत्रों की हमारी जानकारी बिल्कुल अधूरी रह जाती यदि हमारे पास पालि साहित्य न होता। **'धम्मपद'** पालि साहित्य के सुत्तपिटक के पाँचवे ग्रंथ खुद्दक निकाय का दूसरा ग्रंथ है। 423 गाथाओं का यह ग्रंथ–रत्न न केवल पालि साहित्य अपितु विश्व साहित्य में धार्मिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक चेतना का ऐसा ग्रंथ है जो भगवान बुद्ध के सम्पूर्ण जीवन और साधना का निचोड़ है। **'धम्मपद'** को बौद्धों की गीता कहा जाता है, जिस प्रकार गीता हिन्दू–धर्म ग्रंथों का निचौड़ है, उसी प्रकार धम्मपद की प्रत्येक गाथा में बुद्ध–धर्म का सार भरा हुआ है। बुद्ध धर्म को समझने के लिए यह एक मात्र पुस्तक ही पर्याप्त जान पड़ती है। यह मानव धर्म का पर्याय ग्रंथ है। धम्मपद 'तथागत' भगवान बुद्ध के पेंतालीस वर्षों के उपदेशों से संग्रहीत है। धर्म, दर्शन, साधना और मानव कल्याण की कामना के चिन्तन की इतनी लम्बी अवधि के उपदेशों का यह छोटा रूप इसके सारतत्वमय होने का प्रमाण है। धम्मपद की शिक्षाएं एक सम्पूर्ण जीवन–दर्शन है, जिसमें बताये मार्ग पर चल कर व्यक्ति बड़ी–बड़ी बाधाओं और समस्याओं का समाधान पाकर शांति और सद्भाव प्राप्त कर सकता है। धम्मपद में बोद्ध दर्शन और बौद्ध–जीवन–पद्धति के प्रमुख सिद्धांत बड़े सुन्दर ढ़ंग से विवेचित हुए हैं। इसके मुख्य विषय हैं–**कर्मयोग**– निरवैरता, शीलम्, सत्संगीतः, कर्मविपाक, नीतिः अनिद्रा। **साधना**–आत्मदमनम्, देहानित्यत्वम्, जागरूकता, शोधनम्, प्रयोग, वितृष्णा तथा **निष्ठा**– बुद्ध–बौद्धाः, सद्धर्म, पंडितः, भिक्षुः, अर्हम्, ब्राह्मणः। शिल्प की दृष्टि से प्रसादपूर्ण शैली, काव्यमय गैयता का गुण मनुष्य सर्वत्र दिखाई देता है तथा उपमान, दृष्टान्त और उदाहरण कथ्य को सहज बना देते हैं। इसमें एक से बढ़कर एक मन को हर लेने वाली गाथा है, जो व्यक्ति मन–मानस में एक नया संस्कार देती है, व्यक्ति की भौतिक और दुष्वृत्तियों का शमन करती है। आज समाज और व्यक्ति के मन और मस्तिष्क तथा चित्तवृत्तियां और अभिरूचियां विकृत हो रही है। सर्वत्र त्रष्णा, हिंसा, आतंक, निन्दा, दुख, क्लेश, लूट, व्यभिचार, दुराचरण, लोभ, लालच, घृणा, वासना, प्रतिशोध के भंवर जाल में फंसा हुआ है। वह उन्नति के शिखर पर होते हुए भी मानवता और नैतिकता से रहित है। **'धम्मपद'** में संग्रहीत शिक्षाएं व्यक्ति को सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, दार्शनिक अथवा चारित्रिक उच्चता की ओर ले जाती है। काव्यमय, छोटे–छोटे वाक्यों में, सरल, कंठस्थ करने एवं हमेशा धारण करने योग्य ये शिक्षाएं वास्तव में मानव समाज को सही दिशा दे सकती है।

मुख्य शब्द : पालि साहित्य, बौद्ध धर्म, धम्मपद, नैतिकता, आचरण, कर्म, धर्म, दर्शन, मानवता, शील, संयम, परहित, सदाचार, समकालीन, परिवेश, भौतिकता, व्यक्ति, समाज, मूल्य, उन्नति, मानवता, अध्यात्म।

प्रस्तावना

भगवान बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्ति के बाद अपने उपदेशों को संसार–सागर में डूबते–उतरते आर्त्त लोगों के समक्ष प्रस्तुत कर एक नये मानव धर्म का प्रतिपदन किया था। उन्होंने माना था कि संसार दुःखमय है, कोई भी जीव

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-11* July- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

दुख–मुक्त नही है, लेकिन इन दुखों को उन्होंने सहेतुक माना तथा बताया कि दुखों से मुक्ति असंभव नहीं है। उन्होंने अशिक्षा और अज्ञान को समस्त दुखों का कारक मानकर मानव को प्रज्ञावान बनाने का उपदेश दिया था। उनका चरम लक्ष्य था– नाना मत–मतांतरों के कारण समाज में फैली हुई विषमताओं और दुष्कृतियों को दूर कर सच्चे अर्थ में आर्य धर्म की प्रतिष्ठा कर प्राणीमात्र का आत्यंतिक कल्याण। 'बोद्ध साहित्य भारतीय वाङमय की अमूल्य थाति है। बौद्ध–दर्शन व बौद्ध धर्म के प्रसार के कारण ही भारतीय संस्कृति व भारतीय धर्म को विश्व में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। बौद्ध दर्शन में उच्चता के दर्शन होते हैं।[1] पं.राहुल संकृत्यायन ने लिखा है कि भारतीय वाङमय में बोद्ध–साहित्य और उसमें भी पालि साहित्य का बहुत महत्व है। वस्तुतः ईसवीं सन् के पहले और पीछे की पाँच शताब्दियों के भारत के विचार, साहित्य, समाज सभी क्षेत्रों की हमारी जानकारी बिल्कुल अधूरी रह जाती यदि हमारे पास पालि साहित्य न होता।[2]

धम्मपद का वैशिष्ट्य

'धम्मपद' पालि साहित्य के सुत्तपिटक के पाँचवे ग्रंथ खुद्दक निकाय का दूसरा ग्रंथ है। 423 गाथाओं का यह ग्रंथ–रत्न न केवल पालि साहित्य अपितु विश्व साहित्य में धार्मिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक चेतना का ऐसा ग्रंथ है जो भगवान बुद्ध के सम्पूर्ण जीवन और साधना का निचोड़ है। **'धम्मपद'** को बौद्धों की गीता कहा जाता है, जिस प्रकार गीता हिन्दू–धर्म ग्रंथों का निचौड़ है, उसी प्रकार धम्मपद की प्रत्येक गाथा में बुद्ध–धर्म का सार भरा हुआ है। बुद्ध धर्म को समझने के लिए यह एक मात्र पुस्तक ही पर्याप्त जान पड़ती है। यह मानव धर्म का पर्याय ग्रंथ है। धम्मपद 'तथागत' भगवान बुद्ध के पेंतालीस वर्षों के उपदेशों से संग्रहीत है। धर्म, दर्शन, साधना और मानव कल्याण की कामना के चिन्तन की इतनी लम्बी अवधि के उपदेशों का यह छोटा रूप इसके सारतत्वमय होने का प्रमाण है। इस ग्रंथ के महत्व को इस बात से प्रमाणित किया जा सकता है कि इसकी धार्मिक, नैतिक, सदाचरण, मनुष्यता, शील, समाधि, प्रज्ञा, श्रद्धा, संवेग, धर्म–रस, शांति और ज्ञान की श्रेष्ठता के कारण संसार की असंख्य सभ्य भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है। नैतिक और आध्यात्मिक जीवन की उच्चता का गंभीर चिन्तन युक्त ग्रंथन प्रसादपूर्ण तथा दोहा जैसी शैली में होने के कारण श्रोता और पाठक के लिए अत्यधिक आकर्षक और अनुकरणीय है। इसे कंठस्थ करने में पाठक को परमशांति और ज्ञान का अनुभव होता है। बड़े–बड़े मनीषियों और सुधारकों द्वारा मानवता के पथ प्रदर्शन हेतु दी गई शिक्षाएं धम्मपद की ध्वनि ही प्रतीत होती है। 'मूलतः धम्मपद में नीति के वे सभी आदर्श संग्रहीत किये गये हैं जिन्हें भारतीय समाज एवं संस्कृति की सम्पत्ति कहा जाता है।'[3]

'धम्मपद' शब्द का अर्थ है–धर्म–सम्बन्धी पद या शब्द। पद का अर्थ यहां वाक्य या गाथा की पंक्ति भी होता है। बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म–सम्बन्धी शब्दों, वाक्यों या गाथाओं का संग्रह ही धम्मपद है।'[4] भगवान बुद्ध के जीवन काल में ही उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म–संबन्धी वाक्यों, शब्दों, गाथा या पदों का संकलन भिक्षुओं द्वारा कर लिया था। संयुक्त–निकाय में भी धम्मपद शब्द का प्रयोग धर्म–पदों के रूप में हुआ है और इससे अच्छी तरह प्रमाणित हो जाता है कि बुद्ध के काल में ही उनके द्वारा उपदिष्ट गाथाओं का एक संकलन धर्म–पदों के रूप में विद्यमान था और भिक्षु उन्हें कठस्थ करके अपने उपदेशों में प्रयुक्त करते थे। प्रियंकर–सुत्त में कहा गया है कि एक बार भिक्षु अनिरुद्ध श्रावस्ती के **जेतावनाराम** में प्रातःकाल कुछ धर्म–पदों का पाठ कर रहे थे और उन्हें सुनने की आतुरता में एक स्त्री अपने शोर करते हुए पुत्र को चुप करती हुई कहती है, 'मेरे प्रियंकर! चुप हो जा। शोर मत कर। देख, यह भिक्षु धर्मपदों को पढ़ रहा है। यदि हम धर्म–पदों को जोनेंगे तो हमारा **कल्याण** होगा।'[5]

धम्मपद की शिक्षाएं एक सम्पूर्ण जीवन–दर्शन है, जिसमें बताये मार्ग पर चल कर व्यक्ति बड़ी–बड़ी बाधाओं और समस्याओं का समाधान पाकर शांति और सद्भाव प्राप्त कर सकता है। धम्मपद में बोद्ध दर्शन और बौद्ध–जीवन–पद्धति के प्रमुख सिद्धांत बड़े सुन्दर ढ़ंग से विवेचित हुए हैं। बुद्ध के उपदेश संक्षेप में इसी ग्रंथ में दिये गये हैं। ...गीता के समान धम्मपद भी मानव–कल्याण की दृष्टि में रखकर निर्मित किया गया है।''[6] बोद्ध साहित्य का संभवतः सबसे अधिक लोकप्रिय ग्रंथ है। एक प्रकार से इसे बोद्धों की गीता ही कहना चाहिए। सिंहल में बिना धम्मपद का पारायण किये किसी भिक्षु की उपसम्पदा नहीं होती। ...बुद्ध उपदेशों का धम्मपद से अच्छा संग्रह पालि साहित्य में नहीं है। इसकी नैतिक दृष्टि जिनती गम्भीर है, उतनी ही वह प्रसादपूर्ण भी है।'[7]

भदन्त आनन्द कौसल्यायन का कथन है कि ''एक पुस्तक को और केवल एक पुस्तक को जीवन भर साथी बनाने की यदि कभी आपकी इच्छा हुई तो विश्व के पुस्तकालय में आपको 'धम्मपद' से बढ़कर दूसरी पुस्तक मिलनी कठिन हैं। श्री अल्बर्ट जे.एडमण्ड ने धम्मपद की भूमिका में लिखा है कि 'यदि एशिया–खण्ड में कभी किसी अविनाशी ग्रन्थ की रचना हुई, तो वह यह है।''[8] इन गाथाओं ने अनेक विचारकों के हृदय में चिन्तन की आग जलायी है। इन्हीं से अनुप्राणित होकर अनेक चीनी यात्री मंगोलिया के भयानक कान्तार और हिमालय की चोटियाँ लांघकर भगवान बुद्ध के चरणों से पूत भारत–भूमि के दर्शनार्थ आये। इन्हीं को महाराज अशोक ने जिन्होंने प्राणदण्ड का निषेध किया, दासप्रथा को बन्द किया, मनुष्यों और पशुओं तक के लिए अस्पताल खोले–शिलालेखों पर अंकित कराया।'[9] धम्मपद की गाथाएँ सरल और मर्मस्पर्शी हैं। ये अनायास ही कण्ठाग्र भी हो जाती हैं। इनका उपदेश भगवान् बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्ति के समय से लेकर महापरिनिर्वाण पर्यंत समय–समय पर दिया था।... इन गाथाओं को सुनकर आज तक विश्व के अनगिनत दुःख–सन्तप्त प्राणियों का उद्धार हुआ है। इन गाथाओं में शील, समाधि, प्रज्ञा, निर्वाण आदि का बड़ी सुन्दरता के साथ वर्णन है, जिन्हें पढ़ते हुए एक अद्भुत संवेग, धर्म–रस, शांति, ज्ञान और संसार–निर्वेद का अनुभव होता है। आज की विषम परिस्थितियों में इस ग्रंथ के प्रचार की बहुत बड़ी आवश्यकता है। जितना ही इसका प्रचार होगा, उतना ही मानव–जगत् का कल्याण होगा।[10]

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-11* July- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

शोध का उद्देश्य एवं साहित्यावलोकन

यह कटु सत्य है कि भारत में बौद्ध धर्म को जो सम्मान मिलना चाहिए था, वह नहीं मिला। हमारे यहां बौद्ध से बुद्धु (मूर्ख) बन गया, बौद्ध धर्म विदेशों में फला–फूला। बोध साहित्य के साथ भी ठीक ऐसा ही हुआ। जितना संस्कृत साहित्य को धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक महत्व मिला उतना पालि साहित्य अर्थात् बौद्ध साहित्य को नही मिला। यही कारण है कि वर्तमान भौतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक जगत से जुड़ी समस्याओं के मध्यनजर पालि साहित्य का शोधात्मक अनुशीलन नहीं हुआ या नहीं हो रहा है। जबकि बौद्ध साहित्य में निहित मूल्यों में आज की भौतिक समस्याओं के समाधान की क्षमता है, व्यक्ति और समाज के संस्कार की अपार सम्भावना है परंतु अपेक्षा के अनुरूप इस साहित्य का अनुशीलन, अध्ययन और अनुसंधान नहीं हुआ। फिर भी पालि साहित्य और धम्मपद पर मानक पुस्तकें उपलब्ध है जो पाठक और अनुसंधान कर्ता को पालि साहित्य के प्रति समझ पैदा करने के लिए पर्याप्त है। इस दृष्टि से 'पालि साहित्य का इतिहास : भरत सिंह उपाध्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग तृ.सं.1972, एक महत्वपूर्ण मानक पुस्तक है जिसमें बौद्ध साहित्य का परिचयात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन है। इस तरह पालि साहित्य का इतिहास : डॉ.प्रभा अग्रवाल, प्रकाशन केन्द्र सीतापुर रोड, लखनऊ वर्ष 1994, पालि साहित्य एवं व्याकरण : डॉ. गंगासहाय 'प्रेमी', हरिश प्रकाशन आगरा, द्वितीय सं. 1991,पालि दर्शन : डॉ.उदयवीर शर्मा, प्र.सं. पदम बुक कम्पनी, जयपुर (प्रकाशन वर्ष नहीं दे गया है।) धम्मपदम् : संपादक एवं अनुवादक प्रो.सत्यप्रकाश शर्मा, प्रकाशक साहित्य भण्डार सुभाष बाजार मेरठ, षष्ठ सं.1995, 'पालि साहित्य का इतिहास : भिक्षु धर्मरक्षित, प्रकाशक ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी प्रं.सं. 1971 महत्वपूर्ण आधार सामग्री है जो किसी भी शोधार्थी के लिए मार्ग दर्शक का काम करती है। ये पुस्तकें इस शोध पत्र के लिए महत्वपूर्ण सामग्री रही है। इसके अतिरिक्त डॉ. मनोज सोनकर की 'सत्तरोत्तरी हिन्दी कविता' प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, प्र.सं.1994, समकालीन परिवेश से रूबरू कराने वाली एक पहत्वपूर्ण पुस्तक है, जो पाठक को वर्तमान की भयावह तहों तक जाने में मदद करती है। पत्र–पत्रिकाओं में समकालीन जनमत महत्वपूर्ण पत्रिका है जो पाठक को समकालीन परिवेश, व्यक्ति और समाज से अवगत कराती है। शोध–पत्र में पालि साहित्य की अमूल्य निधि 'धम्मपद' में निहित उच्चतर नैतिक शिक्षाओं व निहित मूल्यों का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महत्व के मध्यनजर अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है। इस विषय पर अभी तक जहां तक मेरी जानकारी है, कोई शोध कार्य नही हुआ है। शोध–पत्र में मौलिकता व नवीनता पूरा ध्यान रखा गया है। शोध का उद्देश्य बौद्धों की गीता धम्मपद में निहित मूल्यों और उच्चतर नैतिक शिक्षाओं का विश्लेषण व प्रकाशन है, जिसकी आज के समय और परिवेश में नितांत आवश्यकता है।

धम्मपद : वग्ग विश्लेषण एवं शिक्षाएं

धम्मपद के 26 वग्गों में कुल 423 गाथाएँ हैं। 26 वग्ग तथा वग्गों में गाथाओं की संख्या इस प्रकार है–यमकवग्ग–20, अप्पमादवग्ग–12, चित्तवग्ग–11, पुप्पवग्ग–16, बालवग्ग–16, पंडितवग्ग–14, अरहन्तवग्ग–10, सहस्सवग्ग–16, पापवग्ग–13, दंडवग्ग–17, जरावग्ग–11, अत्तवग्ग–10, लोकवग्ग–12, बुद्धवग्ग–18, सुखवग्ग–12, पियवग्ग–12, कोधवग्ग–14, मलवग्ग–21, धम्मट्ठवग्ग–17, मग्गवग्ग–17, पकिण्णकवग्ग–16, निरयवग्ग–14, नागवग्ग–14, तण्हावग्ग–26, भिक्खुवग्ग–23, ब्राह्मणवग्ग–41। आचार्य विनोबा ने धम्मपद का तीन–'कर्मयोग, साधना और निष्ठा' प्रकार से विषय–विभाग किया है। तीनों भागों को पुनः छः–छः अध्यायों में विभक्त किया है। कर्मयोग– निरवैरता, शीलम्, सत्संगीतः, कर्मविपाक, नीतिः अनिद्रा। साधना–आत्मदमनम्, देहानित्यत्वम्, जागरूकता, शोधनम्, प्रायोग, वितृष्णा तथा निष्ठा– बुद्ध–बौद्धाः, सद्धर्म, पंडितः, भिक्षुः, अर्हम्, ब्राह्मणः।'[11] धम्मपद के अध्ययन से प्रतीत होता है कि आचार्य विनोबा ने सभी गाथाओं के विषय को मोटे रूप में इसमें समेट लिया है। शिल्प की दृष्टि से प्रसादपूर्ण शैली, काव्यमय गैयता का गुण सर्वत्र दिखाई देता है तथा उपमान, दृष्टान्त और उदाहरण कथ्य को सहज बना देते हैं। इसमें एक से बढ़कर एक मन को हर लेने वाली गाथा है, जो व्यक्ति मन–मानस में एक नया संस्कार देती है, व्यक्ति की भौतिक और दुष्वृत्तियों का शमन करती है। सदाचरण, नैतिकता, सत्य, आत्म–ज्ञान, नीति, ज्ञान, मन, शरीर, आत्मा, इंन्द्रिय–संयम, ध्यान–योग, न्याय, अहिंसा, परोपकार, दया, दान, धर्म, संयम, कर्म के प्रति निष्ठा, उद्यमशीलता, चारित्रिक दृढ़ता, अपिरग्रह, सहनशीलता, आत्मोन्नति, व्यावहारिक ज्ञान, चिन्तन, सहिष्णुता, अवैर, संकल्प, चित्त की निर्मलता, तृष्णा का शमन, शील, जीवन और जगत् के प्रति यथार्थ ज्ञान आदि न जाने कितने विषयों को समेटे हुए उपदेश है। पढ़ने पर हर गाथा को कंठस्थ करने की इच्छा होती है। यहां कुछ गाथाओं को उल्लेख किया जा सकता है जिससे धम्मपद में निहित शिक्षाओं पर प्रकाश डाला जा सके।

धम्मपद का पहला वग्ग है– 'यमकवग्ग'। इसमें सबसे मन या विचार की शुद्धता की बात कही है कि मन समस्त धर्मों का अग्रदूत है। यदि कोई बुरे विचार के साथ बोलता है या कोई काम करता है तो दुःख उस व्यक्ति का पीछा उसी प्रकार करता है जैसे पहिया गाड़ी खींचने वाले बैल के पैर का करता है। यदि कोई पवित्र मन (विचार) से बोलता है या कार्य करता है तो सुख उस व्यक्ति का कष्ट न पहंचाने वाली छाया के समान अनुगमन करता है। यथा– मनोपुब्बंगमा धम्मा, मनोसेट्ठा मनोमया/मनसा चे पसन्नेन, भासति वा करोति वा/ततो नं सुखमन्वेति, छाया व अनपायिनी।'(1/2), जो व्यक्ति प्रतिशोध की भावना को आश्रय देता है, उसकी शत्रुता कभी शांत नही होती। वैर से वैर कभी शांत नही होता, अपितु अवैर से ही वैर शांत होता है, यह शाश्वत नियम है–अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनंतनो। 1/5, इन्द्रियादि का संयम रखने वाले व्यक्ति को 'मार' कभी व्यग्र नहीं कर सकता, जिस प्रकार शिलाओं से युक्त पर्वत को वायु उखाड़ नहीं पाती है। जिसने चित्त के मलों का त्याग, दुराचरणों को वमन किये हुए अपवित्र पदार्थ के भांति त्यागकर सद्गुण, आत्म संयम और सत्य से युक्त

कर लिया है वही व्यक्ति काषाय वस्त्र धारण करने योग्य है। सत्य को सत्य और असत्य को असत्य देखने वाले ही सत्य तत्व को प्राप्त करते हैं। बड़ी–बड़ी संहिताओं का भाषण कर तदनुकुल आचरण न करने वाले को उस ग्वाले के समान बताया है जो दूसरों की गायों को गिनता रहता है।

'अप्पमादवग्ग' में प्रमाद (आलस्य) की निन्दा और अप्रमाद (उद्योग, कर्मशीलता) की प्रशंसा की गई है। कहा गया है कि आत्मोत्थान, उत्साह या उद्योग, संयम और दम द्वारा बुद्धिमान व्यक्ति ऐसा स्थान प्राप्त करें जिसे बाढ़ भी अपनी चपेट में न ले सके। अविवेकी एवं दुर्बद्धि मनुष्य आलस्य में लग जाते हैं तो बुद्धिमान व्यक्ति उत्साह या उद्योग की श्रेष्ठ धन के समान रक्षा करते हैं। अप्रमाद के कारण ही इन्द्र देवताओं में श्रेष्ठ बना, आलस्य हमेशा निन्दनीय है। अप्रमाद में तत्पर भिक्षु ही निर्वाण के समीप होता है यथा– अप्पमादरतो भिक्खु, पमादे भयदस्सि वा/अभब्बो परिहानाय, निब्बाणस्सेव संन्तिके।(2/32) 'चित्तवग्ग' में चित्त के संयम व वशीकृत चित्त के महत्व का वर्णन किया है तथा बताया है कि संयमित चित्त सुखकारी व कल्याणकारी होता है, जो चित्त को वश में कर लेंगे वे मार के बंधनों से मुक्त हो जावेंगे, गलत दिशा की ओर प्रेरित चित्त(मन) व्यक्ति का घोर अहित करता है। यहां तक कहा है कि जितनी भलाई न तो माता–पिता कर सकते हैं और न अन्य जाति–भाई, उससे अधिक भलाई सन्मार्ग की ओर प्रेरित चित्त (मन) करता है–यथा– न तं माता–पिता कयिरा, अञ्ञे वापि च ञातका/सम्मापणिहित चित्तं, सेय्यसो नं ततो करे (3/43)

'पुप्पवग्ग' में पुष्प को आधार बनाकर नैतिकता, शील एवं सदाचरण के उपदेश दिया गये है। सदाचार की गंध को सर्वोत्तम माना है। न तो फूलों की गंध और चन्दन की गंध, न तगर और मल्लिका की गंध वायु के प्रतिकूल जा पाती है किन्तु सज्जनों की गंन्घ (कीर्ति) वायु के प्रतिकूल भी जाती है, सत्पुरूष सभी दिशाओं में फैल जाता है। सम्यक ज्ञान से युक्त शीलवंत व्यक्तियों का यश (कीर्ति) सदाचार एवं लोककल्याण के कारण सर्वत्र फैल जाती है। शीलवंन्त लोगों की गंध तो देव लोक तक भी फैल जाती है। यथा– अप्पमत्तो अर्थ गन्धो, त्वाय तगरचन्दनी/यो च सीलवतं गन्धो, वाति देवेसु उत्तमो। (4/56) 'बालवग्ग' में मुर्ख के लक्षण तथा मुर्ख और अज्ञ में अंतर बतलाया है। कहा गया है कि सद्धर्म को न जानने वाले मूर्खों की संसार–यात्रा लम्बी होती है, मूर्खों का साथ अच्छा नहीं है। जो मूर्ख अपनी अज्ञता स्वीकार कर लेता है, वह उसी कारण पण्डित (विद्वान) है। किन्तु वह मूर्ख जो अपने को पण्डित मानता है। वह यथार्थ में मूर्ख है। मूर्ख व्यक्ति विद्वानों के समीप रह कर भी उसी प्रकार धर्म को समझ नहीं पाता जिस प्रकार करछुली दाल के स्वाद को नहीं जान पाती। गोस्वीमी तुलसीदास ने भी लिखा है कि 'मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलीह विरञ्चि सम।

'पण्डितवग्ग' में वास्तविक पंडित पुरूषों के लक्षण बतलाये हैं। वास्तविक पंडित धर्म से प्रेरित करने वाला, अपने मन का दमन करने वाला तथा धर्म वाक्यों को सुनकर अन्तःकरण से शुद्ध हो जाते हैं तथा मृत्यु के दुस्तर अधिकार क्षेत्र (संसार–सागर) को तैरकर पार कर जाते हैं। अन्त में पंडित के लक्षण बतलाते हुए कहा है कि सम्यक ज्ञान के सातों अंगों में जिनके मस्तिष्क भली–भांति उद्बोधित है, जो परिग्रह के प्रति अनासक्तिपूर्वक रत है, जिनके (काम, भाव और अविद्या) तीन आसव नष्ट हो गये हैं तथा दिव्य प्रकाश वाले हैं, वे ही इस संसार में सर्वाधिक सुखी है। अर्थात् वही वास्तविक पंडित है। 'अरहंतवग्ग' में अर्हतों के लक्षणों का गंभीर, दृष्टांत युक्त एवं काव्यमय विवेचन किया गया है। जो आवगमन और शोक रहित व मुक्त है, सभी ग्रंथियां क्षीण हो गई है, उसके लिए संताप नहीं है, जो सचेत होकर उद्योग करते हैं, जो वस्तुओं का संचय नहीं करते, जिनका भोजन नियत है, गांव में या जंगल में, नीचे या ऊचे स्थान में, जहाँ कहीं अर्हत लोग विहार करते हैं, वह भूमि रमणीय भूमि है। जिसके सभी चित्तदोष क्षीण हो गये है, जो विषयभोग में उदासीन हैं तथा जिन्हें शून्य और निरपेक्ष–दोनो ही प्रकार के मोक्ष गोचर हैं, उनकी गति आकाश में उड़ते पक्षी के समान कठिनाई से अनुसरण करने योग्य है।

'सहस्सवग्ग' में मूल मन्तव्य है कि सौ बुरे कार्यों से एक उत्कृष्ट कार्य श्रेष्ठ है। बताया गया है कि सहस्त्रों गाथाओं के सुनने से एक शब्द सुनना अच्छा है, यदि उससे शांति मिले। यथा– सहस्समपि चे गाथा, अनत्थपद्संहिता/एकं गाथापदं सेय्यी,यं सुत्वा उपसम्मति। (7/101) सिद्धांत के मन भर से अभ्यास का कण भर अच्छा है। सहस्त्रों यज्ञों से सदाचारी जीवन श्रेष्ठ है। अभिवादनशील और हमेशा वृद्ध–जनों की सेवा में तत्पर रहने वाले व्यक्ति के चार धर्म–आयु, वर्ण, सुख और बल बढ़ते हैं। 'पापवग्ग' में पुण्य कर्म करने, पाप न करने तथा पाप के फल की अनिवार्यता का उपदेश दिया है। कहा गया है कि न अंतरिक्ष में, न समुद्र में, न पर्वत की गुफा में घुसकर–संसार में कोई ऐसा स्थान नहीं है जहाँ रहकर पापकर्मा (पाप के फलों) से बचे सके। सम्मार्ग पर चलने वाले स्वर्ग में जाते हैं और वासनाओं से शून्य चित्त वाले निर्वाण को प्राप्त करते हैं इसलिए कहा गया है कि कल्याणकारी (शुभ) कार्यों में शीघ्रता करें। पाप कर्म से मन को दूर करें। पुण्य कर्म के करने में देरी करने पर मन पाप में रम जाता है।

'दण्डवग्ग' में बताया गया है कि जो सारे प्राणियों में दण्डत्यागी है, वही ब्रह्मण है, वही श्रमण है, वही जितेन्द्रिय, ब्रह्मचारी और भिक्षु है। भगवान बुद्ध ने अहिसां–मार्ग का प्रवर्तन किया था इसलिए उन्होंने हर कदम पर हिंसा का विरोध किया है। तथा कहा है कि अपने सुख की इच्छा करता हुआ जो सुख चाहने वाले प्राणियों को दण्ड से मारता है, वह मर कर भी सुख प्राप्त नहीं कर सकता। सभी को अपने समान मानकर न किसी को मारे और न मारने के लिए प्रेरित करें। यहां तक कि किंचित मात्र भी कठोर मत बोलो, क्रोधयुक्त वाक्य दुःखदायी होते हैं। 'जरावग्ग' में वृद्धावस्था के दुखों का दर्शन तथा संसार की अनित्यता की याद दिलाते हुए निर्वेद का उपदेश दिया है । कि जब नित्य ही आग जल रही है तो क्या हंसी है, क्या आनन्द है ! अंधकार में घिरे

हुए तुम क्यों नहीं दीपक को ढूढ़ते हो। स्वयं भगवान बुद्ध अपने उद्गार में कहते हैं कि अनेक जन्मों तक बिना रूके मैं संसार में दौड़ता रहा। इस कायारूपी कोठरी को बनाने वाले को खेजते–खोजते पुनः–पुनः मुझे दुखमय जन्मों में गिरना पड़ा। आज हे गृह कारक ! मैंने तुझे पहचान लिया। अब तू फिर घर नहीं बना सकेगा। तेरी सारी कड़ियां भग्न कर दी गई है। तृष्णाओं का विनाश हो गया है।

'अत्तवग्ग' में आत्मोन्नति का मार्ग बताते हुए कहा है कि पहले अपने को ही सन्मार्ग पर लगावे, बाद में दूसरे को उपदेश दें। पहले मनुष्य अपने को वैसा बनाए जैसा वह दूसरे को उपदेश देता है, क्योकि अपना दमन करना निश्चय ही कठिन है। इसी वग्ग की प्रसिद्ध गाथा है कि 'पुरुष आप ही अपना स्वामी है, दूसरा कौन स्वामी हो सकता है? अपने को भली प्रकार दमन कर लेने पर वह दुर्लभ स्वामी को पाता है।' बुरे और अपना अहित करने वाले कार्यों का करना आसान है, पर जो कार्य हितकारी और अच्छा है, उसका करना अत्यंत कठिन है। 'लोकवग्ग' में लोक के लिए नैतिक शिक्षा, सदाचरण, अप्रमाद, धर्माचरण, दान और धेर्य, मूर्ख और कंजूस की निन्दा, मिथ्या दृष्टि का निषेध, पुण्यकर्म तथा परलोक की स्पृहा, धर्म और सत्य का अतिक्रमण करने वालों की निन्दा, मूर्ख और विज्ञ के अन्तर आदि का उपदेश दिया गया है। एक गाथा में भगवान बुद्ध कहते हैं कि उठ पड़, प्रमाद न कर, सदाचार युक्त धर्म का आचरण कर। धर्म का आचरण करने वाला इस लोक तथा परलोक में चैन से सोता है। यथा– धम्मचारी सुखं सेति, अस्सिं लोके परम्हि च। (13/169)

'बुद्धवग्ग' में भगवान बुद्ध के उपदेशों एवं शिक्षा का सर्वात्तम सार दिया हुआ है। सारे पापों का न करना, पुण्यों का संचय करना, अपने चित्त को परिशुद्ध रखना– यही बुद्धों का शासन, निन्दा न करना, घात न करना, भिक्षु–नियम द्वारा अपने को सुरक्षित रखना, परिमाण जानकर भोजन करना, चित्त को योग में लगाने को बुद्धों का शासन बताया गया है तथा कहा गया है कि मनुष्य जन्म का लाभ कठिन है, जन्म लेकर भी मनुष्यों का जीवन कठिन है, जीवित रहकर भी सद्धर्म सुनना कठिन है, बुद्धों की उत्पत्ति कठिन है। क्षमा और सहनशीलता परम तप है। दूसरों को हानि पहुंचाने वाला और घृणा करने वाला कभी–भी प्रव्राजक और श्रमण नहीं बन सकता। 'सुखवग्ग' में उस सुख की महिमा बतलाई गई है जो नैतिकता, सदाचार, मैत्रीभाव, पुण्य और सत्य द्वारा प्राप्य हो तथा धन सम्पत्ति के संयोग से रहित हो, वही यथार्थ सुख है। कहा गया है कि विजय शत्रुता को उत्पन्न करती है, पराजित हुआ मनुष्य दुख की नींद सोता है। जय–पराजय को त्याग कर पूर्णतया शांत मनुष्य सुख की नींद सोता है। आरोग्य परम लाभ है, सन्तुष्टि परम धन है, विश्वास बन्धु है और निर्वाण परम सुख है। यथा– आरोग्य परमा लाभा, सन्तुट्ठि परमं धनं/विस्सास परम ञाति निब्बानं परम सुखं। (15/204) कबीरदास जी ने भी लिखा है कि जब आवे संतोष धन, सब धन धूल समान। 'पियवग्ग' में प्रेम (मोह और अज्ञान जन्य आसक्ति) से उत्पन्न शोक और दुःख का वर्णन किया है तथा बताया है कि जिसके जितने अधिक प्रिय, उसको उतने ही अधिक दुःख। पियतो जायती सोको, पियतो जायती भयं/पियतो विप्पमुत्तस्स, नत्थि सोको कुतो भयं। (16/212) अर्थात् प्रिय से शोक उत्पन्न होता है, प्रिय से भय उत्पन्न होता है, प्रिय से मुक्त व्यक्ति को शोक नहीं, भय कहां से होगा। रति, काम और तृष्णा दुःख के कारक है तथा इनसे मुक्ति ही दुःख से मुक्ति है।

'कोधवग्ग' की मूल भावना है कि अक्रोध से क्रोध को जीतो, असाधु को साधुता से जीतो, कृपण को दान से जीतो तथा झूठ बोलने वाले को सत्य से जीतो। ये भगवान बुद्ध का मानवता के प्रति बहुत बड़ा संदेश है, जिसमें सत्य और अहिंसा का मर्म छुपा है। ये उपदेश हृदय और भावनात्मक परिवर्तन और क्रांति के अमोघ हथियार है। लिखा है कि शरीर, वचन और मन से क्रोध की रक्षा करें, शरीर, वाणी और मन से संयत रहे मन, वचन और शरीर के दुष्चिरित्र को त्योगकर शारीर और मन से सदाचार का आचरण करें। 'मलवग्ग' में भगवान बुद्ध ने 'मल' की बहुत सुन्दर और यथार्थ व्याख्या की है। कहा है कि अविद्या ही सबसे बड़ा मैल है (अविज्जा परमं मलं), भिक्षुओं ! इस मल को त्याग कर निर्मल बनो। कहा है कि स्वाध्याय न करना मन्त्रों का मैल है, मरम्मत न करना घरों क मैल है, आलस्य वर्ण या सौंदर्य का मैल है, असावधानी रक्षक का मैल है, दुराचरण स्त्री का मैल है, कृपणता दानी का मैल है, बुरे कर्म इस लोक और परलोक में भी मैल है। भगवान बुद्ध ने कहा है कि दूसरों का दोष देखना सरल है पर अपना दोष देखना कठिन है।

'धम्मट्ठवग्ग' में वास्तविक धर्मात्मा पुरुषों के लक्षण बतलाये हैं। यथा– 'असाहसेन धम्मेन, समेन नयती परे/धम्मस्स गुत्तो मेघावी, धमट्ठो' ति पवुच्चति' अर्थात् जो मनुष्य दुस्सास छोड़कर समान धर्म से दूसरों को सन्मार्ग पर ले जाता है वह धर्म रक्षक, मेधावी और धर्मिष्ठ है। (19/257) आयु से सिर सफेद होने को व्यर्थ ही बुढ़ापा कहा जाता है; जिसमें सत्य, धर्म, अहिंसा, संयम एवं दम है, वही मल रहित, धीर और थेर (वृद्ध) कहा जाता है; मौन धारण करने से साक्षात् मूर्ख और अविद्वान मुनि नहीं हो जाता अपितु जो भले–बुरे को तुला के सामान तोलता है और अच्छे को ग्रहण करता है, वही पण्डित है। भिक्षुओं को मार्मिक उपदेश देत हुए कहते हैं कि 'भिक्षुओं ! जब तक चित्त–मलों का विनाश न कर दो, विश्वास या चैन मत लो। 'मग्गवग्ग' में निर्वाण–गामी मार्ग का वर्णन है। कहा है कि सभी संस्कारों को अनित्य, दुःख और अनात्म समझते हुए मनुष्य को चाहिये कि वाणी की रक्षा करने वाला और मन से संयुमी रहे तथा काया से पाप न करे। इन तीनों कर्म–पथों की शुद्धि करे और ऋषि (बुद्ध) के बताये धर्म का सेवन करे। योग और ज्ञान का उपदेश देते हुए कहा है कि योग से अगाध ज्ञान उत्पन्न होता है। अयोग से ज्ञान का क्षय होता है। उन्नति और विनाश के इन दो भिन्न–भिन्न मार्गों को जानकर अपने को इस प्रकार लगाये जिससे ज्ञान की वृद्धि हो।

'पकिण्णकवग्ग' में अहिंसा, दुःखदोषानुचिंतन, ध्यानाभ्यास, संशय के निवारण (वेय्यग्घञ्चमं), स्मृतिमान् व बुद्धिमानों के चित्तमलों के नाश आदि का वर्णन करते हुए लिखा है कि दूसरों को दुःख देने से जो अपने सुख

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-11* July- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

की इच्छा करता है, वैर के संसर्ग में लिपटा हुआ वह वैर से मुक्त नहीं होता। अल्प सुख के परित्याग से यदि अत्यधिक सुख देखे तो अधिक सुख को देखते हुए धीरवान व्यक्ति को चाहिए कि वह अल्प सुख को छोड़ दे। सन्त दूर से ही प्रकाशित होते है तो असंत समीप से भी दिखाई नहीं देते है। यथा–'दूरे सन्तो पकासेन्ति,हिमवन्तो'व पब्बतो/असन्तेत्थ न दिस्सन्ति, रत्तिं खित्ता यथा सरा। (21/304) 'निरयवग्ग' में बताया गया है कि कैसे पुरूष नरक कामी होते है। जैसे कण्ठ में गेरुआ वस्त्र डालने वाले बहुत से पापी और असंयत होते हैं। वे अपने पाप कर्मों से नरक में जाते हैं। दुराचार और असंयमी राष्ट्र का अन्न खाने से अग्नि की लौ के समान जलता हुआ लोहे का गोला खाना श्रेयष्कर है। दुष्कृत्य न करना श्रेष्ठ है क्योंकि दुष्कृत्य पीछे दुःख देते हैं। सुकृत्य करना श्रेष्ठ है, जिसे करने के बाद मनुष्य दुःखी नही होता। मिथ्यादृष्टि वालों की दुर्गति के बारे में बताते हुए लिखा है कि अवज्ज वज्जमतिनो, वज्जे चावज्जदस्सिनो/मिच्छादिट्ठिसमादाना, सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं।(22/318) 'नागवग्ग' में हाथी के समान अडिग और धेर्यशाली लोगों, शील, श्रद्धा, प्रज्ञा, कटु–वाक्यों सहना, प्रज्ञालाभ, माता–पिता की सेवा, जीवों के प्रति समभाव आदि का उपदेश दिया गया है। आलस्य नरक कारक है यथा– आलसी, बहुत खाने वाला, निद्रालु, करवट बदल–बदल कर सोने वाला, खा–खा कर बड़े सुअर के समान मोटा हो जाता है, तब वह मूर्ख बार–बार गर्भ को प्राप्त होता है। मूर्ख की सहायता से अकेले विचरण करना श्रेष्ठ है। वृद्धावस्था तक शील का पालन, स्थिर हुई श्रद्धा, प्रज्ञा का लाभ तथा पापों का न करना सुखकर है।

'तण्हावग्ग' में तृष्णा को समूल खोद डालने का उपदेश दिया है। प्रमादयुक्त आचरण करने वाले मनुष्य की तृष्णा मालुवा लता के समान बढ़ती है तथा तृष्णा युक्त व्यक्ति बंदर की तरह दौड़–धूप करता रहता है, उसके शोक वीरण घास की तरह बढ़ते हैं और जो जालिम और दुस्त्याज्य तृष्णा को संसार में परास्त कर देता है, उससे शोक उसी तरह गिर जाता है जैसे कमल से जल की बूंदें। भगवान बुद्ध कहते हैं कि मैं तुम्हारे कल्याण के लिए कहता हूँ कि जैसे खस के लिए लोग उशीर को खोदते हैं, वैसे ही तुम तृष्णा की जड़ को खोदो। धर्म का दान सब दानों को जीत लेता है। धर्म का रस सब रसों को जीत लेता है। धर्म की अनुरक्ति सभी रोगों को जीत लेती है और तृष्णा का क्षय सब दुखों को जीत लेता है यथा– 'सब्बदानं धम्मदानं जिनाति, सब्बरस धम्मरसो जिनाति/ सब्बरतिं जिनाति, तण्हक्खयो सब्बदुक्खं जिनाति।' (24/354)

'भिक्खुवग्ग' में भिक्षुओं के लिए राग–द्वेष से मुक्ति एवं संयम का लोमहर्षक उपदेश है। इस नाव को उलीचो। उलीचने पर यह तुम्हारे लिए हल्की हो जायेगी। राग और द्वेष को छेदन कर फिर तुम निर्वाण को प्राप्त कर लोगे। हे भिक्षु ध्यान में लगो। मत असावधानी करो। मत तुम्हारा चित्त भोगों के चक्कर में पड़े। प्रमत्त होकर मत लोहे के गोले को निगलो। नेत्र, कान, नाक, जीभ, शरीर, वाणी और मन के संयम श्रेष्ठ है। 'ब्राह्मणवग्ग' में वास्तविक ब्राह्मण के लक्षणों के बारे में विस्तारपूर्वक बताया गया है। भगवान बुद्ध सार रूप में कहते हैं कि मैं माता और योनी से उत्पन्न होने से किसी को ब्राह्मण नही कहता। 'झायिं विरजमासीनं, कतकिच्चमनासव/उत्तमत्थमनुप्पत्तं, तहम ब्रूमि ब्राह्मणम्' (26/386) अर्थात् ध्यानी, मलरहित, स्थिर, कृतकृत्य, चित्त के मैलों से शून्य,उत्तम अर्थ (सत्य) को प्राप्त हुए व्यक्ति को मैं ब्राह्मण कहता हूँ। जो अरिग्रह और लेने की इच्छा न रखने वाला है, जो बिना दुषित चित्त किये गाली, वध और बंधन को सहन करता है, जो भोगों में लिप्त नहीं है, क्षमा बल ही जिसका सेनापति है, विरोधियों के बीच विरोध रहित तथा दण्डाधिकारियों के बीच दण्ड रहित है, क्रोध न करने वाला, व्रती, शीलवन्, दान्त (संयमी) और अंतिम शरीर वाला है, जो गंभीर प्रज्ञा वाला, मेघावी, मार्ग–अमार्ग को जानने वाला, राग, द्वेष, मान और भ्रम से दूर है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। न जटाओं से, न गोत्र से और न जाति से ही कोई ब्राह्मण होता है। जिसमें सत्य है, धर्म है, वही ब्राह्मण है। यथा– 'न जटाहि न गोत्तेन, न जच्चा होति ब्राह्मणो/यम्हि सच्च च धम्मो च, सो सुखो सो च ब्राह्मणो।' (26/393)

वर्तमान परिवेश और धम्मपद की उपादेयता :

आज समाज और व्यक्ति के मन और मस्तिष्क तथा चित्तवृत्तियां और अभिरूचियां विकृत हो रही है। सर्वत्र त्रष्णा, हिंसा, आतंक, निन्दा, दुख, क्लेश, लूट, व्यभिचार, दुराचरण, लोभ, लालच, घृणा, वासना, प्रतिशोध के भंवर जाल में फंसा हुआ है। वह उन्नति के शिखर पर होते हुए भी मानवता और नैतिकता से रहित है। उसमें धर्म और अध्यात्म की चेतना नही है। जहाँ कही धर्म और अध्यात्म है उसमें भी पाखण्ड है, वासना है। धर्म स्थल पंडे–पुजारियों के लिए शोषण के अड्डे बन गये है तो शैलानियों के लिए शेरगाह। नैतिकता, सत्य, दया, धर्म जैसे शब्द थोथे और बैमानी माने जाने लगे हैं, लोगों में दुराचारों से भय खत्म हो गया है। दुराचारियों का सम्मान और माता–पिता व वृद्ध बोझ माने जाने लगे हैं, धर्मगुरू वासना में कैद है,। नेता और तथाकथित समाज सुधारकों की कथनी और करनी में अंतर है। आये दिन कल तक लोकप्रिय और पूजनीय माने जाने वाले लोग घृणित कारनामों के कारण शलाकों के पीछे हैं। पूंजीवाद ने अधिसंख्य लोगों को गरीबी, भूखमरी, दरिद्रता का जीवन जीने को विवश कर दिया है। परिग्रह की बलवती भावना ने वस्तु और धन को कोठरियों में बंद कर दिया है। व्यक्ति वासना का पुंज बन गया है। समूचा वातावरण दुषित–सा हो गया है। जातिवाद, छुआछूत, भेदभाव, हिंसा, असहिष्णुता समाज और संस्कृति को न केवल मैला कर रहे हैं। समाज और संस्कृति से मानवता, शील, संयम, परहित, अपरिग्रह, दान, परोपकार और सदाचार जैसे गुण लुप्त होते जा रहे हैं। महिलाओं, गरीबों, दलितों, आदिवासियों, किसानों, मजदूरों पर अत्याचार बढ़ रहे हैं। कोई अपच से परेशान तो कोई भूख से मर रहा है। छल–छद्म मूल्य बन गये है। अत्याचारियों का अभिनन्दन है, वास्तिविकता पर परदे डाल जाते हैं। पंकज चतुर्वेदी की कविता– 'फूल जो बरसाये' इसका बखुबी बयान करती है। यथा– 'फूल जो बरसाये/अत्याचारी पर/वे

अत्याचारी ने ही/मुहैया कराये हैं/यह आत्म अभिनन्दन/ जो दिखता है/सम्मोहन की तरह/दृश्य एक परदा है पड़ा हुआ/वास्तविक दृश्य पर।'[12] चारित्रिक कालुष्य पसरा है व्यवस्था में, धूमिल लिखते हैं कि 'चरित्र हीनता/मंत्रियों की कुर्सियों में तब्दील हो चुकी है।''[13] वाणी का संयम नहीं है, चुनाव आते ही नेतृत्व कर्ताओं की वाणी विषैली और अमर्यादित हो जाती है। चाहे समाज हो, राजनीति हो या फिर अन्य क्षेत्र। मूल्यहीनता आज सिर पर चढ़कर बोल रही है। यथा– 'सत्य चुराता नजरें हमशे/इतने झूठे हैं हम लोग।'[14] आज के इस पूंजीवदी युग में ज्ञान, विवेक, बुद्धि सब बिकाऊ से हो गये हैं। पूंजी और शासक के सामने सब नत मस्तक है। मुक्तिबोध ने लिखा है कि सब चुप, साहित्यिक चुप और कविजन निर्वाक/चिन्तक, शिल्पकार, नर्तक चुप हैं/उनके खयाल से यह सब गप है/मात्र किंवदन्ती।/रक्तपायी वर्ग से नाभिनाल–बद्ध ये सब लोग/नपुंसक भोग–शिरा–जालों में उलझे।....बौद्धिक वर्ग है क्रीतदास/किराये के विचारों का उद्भास। बड़े–बड़े चेहरों पर स्याहियाँ पुत गयीं/नपुंसक श्रद्धा/सड़क के नीचे की गटर में छिप गयी,/कहीं आग लग गई, कहीं गोली चल गयी।'[15] मनुष्य पूंजी का दास बन गया है, मानवीय और सामाजिक संबंध समाप्त से हो गये हैं। वास्तव में पूंजीवादी व्यवस्था में मानवीय रिश्ते समाप्त हो जाते है, केवल व्यापारिक सम्बंध जिंदा रहते हैं।'[16] आज पारास्परिक वैमनष्य, शोषण और अत्याचार, मौकापरस्तगी, लूट, झूठ और अभिमान ही सर्वत्र दिखाई देने लगे हैं। आज के परिवेश में भगवान बुद्ध की नैतिक शिक्षाएं भटकती मानवता को दिशा देने में समर्थ है। आज की शिक्षा में भगवान बुद्ध के इन नैतिक और चारित्रिक शिक्षाओं को जोड़ा जाना आवश्यक प्रतीत होता है। ये शिक्षाएं आज के मूल्य विघटन को रोक सकती है। **'धम्मपद'** में संग्रहीत शिक्षाएं व्यक्ति को सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, दार्शनिक अथवा चारित्रिक उच्चता की ओर ले जाती है। काव्यमय, छोटे–छोटे वाक्यों में, सरल, कंठस्थ करने एवं हमेशा धारण करने योग्य ये शिक्षाएं वास्तव में मानव समाज को सही दिशा दे सकती है।

निष्कर्ष

समग्रतः कहा जा सकता है कि धम्मपद न केवल पालि साहित्य अपितु सम्पूर्ण भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि है। आज का परिवेश नैतिक और सामाजिक दृष्टि से अत्यधिक विकृत हो चुका है, व्यक्ति उन्नति के शिखर पर होकर भी कुछ खाली सा दिखाई देता है या वह स्वयं ही महसूस करता है। धम्मपद में निहित मूल्य और शिक्षाएं आज के तृस्त मानव समाज को नैतिक और मानवीय मूल्यों से सरोबार कर सकती है। ये शिक्षाएं अत्यधिक सरल एवं कंठस्थ करने योग्य होने के कारण सहज ग्राह्य हैं। आवश्यकता है आज इन नैतिक शिक्षाओं को हमारी पाठ्य सामग्री में सम्मिलित करने तथा अध्ययन और अध्यापन की।

सदर्भ ग्रंथ सूची

1. *पालि साहित्य का इतिहास : डॉ.प्रभा अग्रवाल प्रकाशन केन्द्र सीतापुर रोड, लखनऊ वर्ष 1994 पृ. सं. 35*
2. *पालि साहित्य का इतिहास (प्राक्कथन) : भरत सिंह उपाध्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग तृ.सं.1972*
3. *पालि साहित्य एवं व्याकरण : डॉ.गंगासहाय 'प्रेमी', हरिश प्रकाशन आगरा, द्वितीय सं.1991 पृ.सं.48*
4. *पालि साहित्य का इतिहास : भरत सिंह उपाध्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग तृतीय सं.1972 पृ.सं. 238*
5. *पालि साहित्य का इतिहास : भरत सिंह उपध्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग तृतीय सं.1972 पृ.सं. 238*
6. *पालि दर्शन : डॉ.उदयवीर शर्मा, प्र.सं. पदम बुक कम्पनी, जयपुर पृ.सं.94.95*
7. *पालि साहित्य का इतिहास : भरत सिंह उपाध्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग तृतीय सं.1972 पृ.सं. 238*
8. *साहित्य का इतिहास : भिक्षुधर्मरक्षित प्रकाशक ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी प्रं. सं. 1971 पं.सं. 70*
9. *पालि साहित्य का इतिहास : भिक्षुधर्मरक्षित प्रकाशक ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी प्रं. सं. 1971 पं.सं. 70*
10. *पालि साहित्य का इतिहास : भिक्षुधर्मरक्षित प्रकाशक ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी प्रं. सं. 1971 पं.सं. 70–71*
11. *धम्मपदम् : सं.एवं अनुवादक प्रो.सत्यप्रकाश शर्मा, प्रकाशक साहित्य भण्डार सुभाष बाजार मेरठ35*
12. *समकालीन जनमत : संयुक्तांक मार्च–अप्रैल 2017 (आन्तरिक आवरण पृ.)*
13. *संसद से सड़क तक : धूमिल पं. 47*
14. *हिन्दी गजल : उद्भव और विकास : डॉ.रोहिताश्व अस्थाना पृ. सं. 260*
15. *चाँद का मुँह टेढ़ा है : गजनन माधव मुक्तिबोध, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, कनॉट प्लेस, नयी दिल्ली, सप्तम सं.1989 पृ.सं.235*
16. *सत्तरोत्तरी हिन्दी कविता : डॉ.मनोज सोनकर, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, प्रं.सं.1994 पृ.सं. 17*